उड़ता पंजाब : बहस जो हुई ही नहीं

मुंबई उच्च न्यायालय के फैसले के बाद निर्देशक अभिषेक चौबे की फिल्म 'उड़ता पंजाब' पर शुरू हुआ विवाद सुप्रीम कोर्ट तक जा पहंुचा। लेकिन इस पूरे प्रकरण में इस बात पर बहस रह ही गयी कि क्या युवाओं के बीच नशे या हिंसा के महिमामंडन के लिए हमारा फिल्म उद्योग जिम्मेदार है ? अगर हां तो कितना जिम्मेदार ?

यह बहस पुरानी है कि समाज की कुरीतियों के लिए सिनेमा कितना जिम्मेदार है ? इसके पक्ष में तर्क दिया जाता रहा है कि चूंकि सिनेमा का आम जीवन पर बड़ा प्रभाव है और आमजन उन्हें अपनी जिंदगी में उतारने की कोशिश करता है। ऐसे में अगर, किसी लोकप्रिय फिल्म में नशे, हिंसा या यौनाचार का महिमामंडन है तो समाज पर इसका बुरा प्रभाव पड़ना तय है।

हाल में, सेंसर बोर्ड ने कुछ म्यूजिक वीडियो पर पाबंदी लगाकर उन्हें पास करने से इनकार कर दिया। क्योंकि, उनमें, नशे और हिंसा का हद से ज्यादा महिमामंडन था।

जानकारी के मुताबिक, 'तौर तबाही' नाम के एक म्यूजिक वीडियो में तो एक व्यक्ति प्रधानमंत्री जैसा रूप-रंग बनाकर नशे का सेवन करते दिखाया गया है। सेंसर ने इसे पास करने से इनकार कर दिया। इसी तरह 'केस बोल्दे', 'वारदात', 'अस्ले दा मस्ला', 'नक नक', 'तिहाड़ जेल', 'कोक दी बोतल' नाम से वे अन्य म्यूजिक वीडियो हैं जिन्हें सेंसर बोर्ड ने पास करने से इनकार कर दिया क्योंकि इनमें नशा, ड्रग्स और हिंसा के भयानक महिमा मंडन के अलावा महिलाओं और युवा लड़कियों पर ऐसी टिप्पणियां की गयी हैं जिन्हें सभ्य समाज में इतनी नव-उदारता के बाद भी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।

लेकिन उन म्यूजिक वीडियो की संख्या कई गुना ज्यादा है जिनमें नशा, हिंसा का जरूरत से ज्यादा बखान है, लेकिन फिर भी सेंसर ने उन्हें पास कर दिया। अब जरा उन म्यूजिक वीडियो पर नजर डालते हैं जिन्हें सेंसर ने 'यूए' (जिन्हें नाबालिग अपने अभिभावक की सलाह पर देख सकते हैं) सर्टिफिकेट दिया है और जो दिन-रात हिंदी और पंजाबी म्यूजिक चैनलों पर चलते रहते है। आप पायेंगे कि इन गानों की पंक्तियों में 'दारु ऑन द रॉक्स', 'शूट', 'पंजाबी शिट', 'गोली', 'शॉटगन', 'टल्ली', 'टकीला शॉट', 'दारु वाले कीड़े', जैसे शब्द यदा-कदा सुनाई पड़ते हैं।

लेकिन ताजा नारा यह है कि सेंसर का काम काटना नहीं, सिर्फ सर्टिफिकेट देना है। फिल्म 'उड़ता पंजाब' विवाद में तमाम फिल्मकार, कलाकार, बुद्धिजीवी समेत मुंबई उच्च न्यायालय की भी राय यही बनी कि सेंसर किसी भी फिल्म के दृश्य या संवाद को काटने-छांटने की बजाय सिर्फ उन्हें एक सर्टिफिकेट (मौजूदा नियमों के अनुसार, 'ए', 'यू', 'यूए') दे कि फलां फिल्म वयस्कों के लायक है या सभी के देखने लायक है। तो फिर सवाल यह उठता है कि जब सेंसर बोर्ड के नए दिशानिर्देश आ जायेंगे (केंद्र सरकार ने घोषणा की है कि जल्द ही सेंसर बोर्ड के लिए नए दिशानिर्देश लाये जायेंगे जिनके तहत सेंसर बोर्ड का काम कैंची चलाना नहीं बल्कि उन्हें एक सर्टिफिकेट देना होगा !) तो उन फिल्मों या दृश्यों या म्यूजिक वीडियो गानों का क्या होगा जिनमें या तो देश के प्रधानमंत्री का मजाक बनाया गया हो, या ऐसा ही कुछ और दिखाया जाएगा ?

एक पंजाबी गायक हैरी मिर्जा का गाया, जट्ट नू बना ता तेरे दु :ख ने, बल्लिये स्मैक दा गुलाम नी (तुम्हारे दर्द ने मुझे स्मैक का गुलाम बना दिया) खूब लोकप्रिय है तो एक दूसरे गाने में लड़का कहता है कि जितनी तेरे कॉलेज की सारी फीस है, उससे ज्यादा तो मैं नगनी (ब्लैक हिरोइन) पर खर्च करता हूं, (जिन्नी तेरी कलेज दी फीस झल्लिये, इन्नी नगनी जट्टां दे पट खानदा तड़के)। योयो हनी सिंह, दिलजीत दोसांझ और बादशाह जैसे गायकों के बारे में क्या बोला जाए, जिनके गानों में 'नशा' और 'दारू' जैसे शब्द ही सुनायी पड़ते हैं।

मुंबई स्थित एक म्यूजिक चैनल के एक अधिकारी नाम ना छपने के अनुरोध पर बताते हैं, "आजकल म्यूजिक और अन्य चैनलों पर चलने वाले 80 प्रतिशत गाने और म्यूजिक वीडियो प्रतिबंध होने लायक हैं। लेकिन हमें टीआरपी उन्हीं से मिलती है। वे कहते हैं कि अगर गाने में चिट्टा, अफीम, नगनी, स्नाइपर आदि का बखान हो हम कई बार उन्हें चलाने से मना कर देते हैं लेकिन वे अपने गाने यू टचूब पर अपलोड कर देते हैं जहां उन्हें लाखों हिट्स मिलते हैं। ऐसे गानों के दर्शक ज्यादातर 15 से 25 आयु वर्ग के होते हैं।"

क्या ऐसे गानों और दृश्यों को बिना किसी काट-छांट के फिल्मों और टेलीविजन पर दिखाने की अनुमति देना ठीक है ? प्रसिद्ध समाज सेविका और दिल्ली स्थित सेंटर फॉर सोशल रिसर्च की निदेशक रंजना कुमारी कहती हैं, "मुझे लगता है कि जिस तरह से मीडिया के संगठनों ने खुद अपने लिए एक सेल्फ सेंसरशिप की व्यवस्था बनाई है, उसी तरह से फिल्म वालों को भी अपने लिए एक ऐसा संगठन बनाना चाहिए जिनमें उनके अपने लोग हों और जो यह सुनिश्चित करें कि फिल्मों में हिंसा या ड्रग्स या अन्य किसी बुराई का बढ़-चढ़ कर बखान ना हो, उन्हें ग्लैमराइज ना किया जाए।"

हिंदी सिनेमा की बात करें तो 'उड़ता पंजाब' (इस फिल्म के सह निर्माता अनुराग कश्यप हैं) कोई ऐसी पहली हिंदी फिल्म नहीं है जिस पर ड्रग्स के इस्तेमाल के महिमामंडन के आरोप लगे हों। अनुराग कश्यप की ही 2009 की फिल्म 'देव डी' में जब हीरो अभय देओल की प्रेमिका की शादी हो जाती है तो वह ड्रग्स और शराब की शरण ले लेता है। अनुराग कश्यप प्रोडक्शन की एक अन्य फिल्म 'शैतान' (2011) उन पांच दोस्तों के बारे में है जो निरुद्देश्य भटकते हैं और ड्रग्स और शराब में डूबे रहते हैं। इसके अलावा मधुर भंडारकर की 'फैशन' (2008), 'पंख' (2010), 'दम मारो दम' (2011), 'गो गोवा गोन (2013) जैसी कई अन्य फिल्मों में ड्रग्स एक प्रमुख विषय है और कई बार जाने-अनजाने ड्रग्स के इस्तेमाल को आधुनिकता, लापरवाही और मस्त जिन्दगी के नुस्खे की तरह पेश किया गया है। कहना ना होगा कि ऐसी फिल्मों के जरिये नजर बॉक्स अफिस पर ही रहा करती है।

राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता सैबल चटर्जी इससे सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं, "फिल्म वाले किस तरह की फिल्म बनाते हैं, वह सिर्फ उनका फैसला हो सकता है। लेकिन किसी फिल्म में जान-बूझकर जब तक हिंसा भड़काने या ड्रग्स के इस्तेमाल को सही ठहराने की कोशिश ना हो, उस फिल्म पर किसी किस्म के प्रतिबंध की कोशिश गलत है।" एक वरिष्ठ फिल्म समीक्षक का कहना है कि किस फिल्म या किस कलाकृति को देखें या पसंद करें और किसे खारिज कर दें, यह देखने वालों पर छोड़ देना चाहिए इसमें सरकारों का दखल नहीं होना चाहिए। उनका मानना है कि किसी भी प्रजातांत्रिक देश और सभ्य समाज में एक अच्छी फिल्म के लिए भी जगह होनी चाहिए और एक बुरी फिल्म के लिए उन्हें सर पर उठाना है

या सिरे से खारिज कर देना है, यह फैसला दर्शकों का है।

सेंसर बोर्ड की यह कोशिश नहीं रहती कि वह फिल्म की रचनात्मकता में कोई बाधा डाले या इसके जारी होने में रोड़ा बने। अगर हमें ड्रग की समस्या कोई दिक्कत होती तो हम 'धी पंजाब दी' फिल्म को पारित क्यों करते जो इसी मुद्दे पर है? इसके निर्माता बलजीत सिंह ने उड़ता पंजाब फिल्म की भाषा को गलत बताया है। संसर बोर्ड में हम किसी फिल्म के विरुद्ध नहीं हैं।
-पहलाज निहलानी, अध्यक्ष, फिल्म सेंसर बोर्ड

साभार- साप्ताहिक पाञ्चजन्य से